मणिपुर जल रहा है

मणिपुर डायरी

एक प्रदेश की व्यथा- कथा

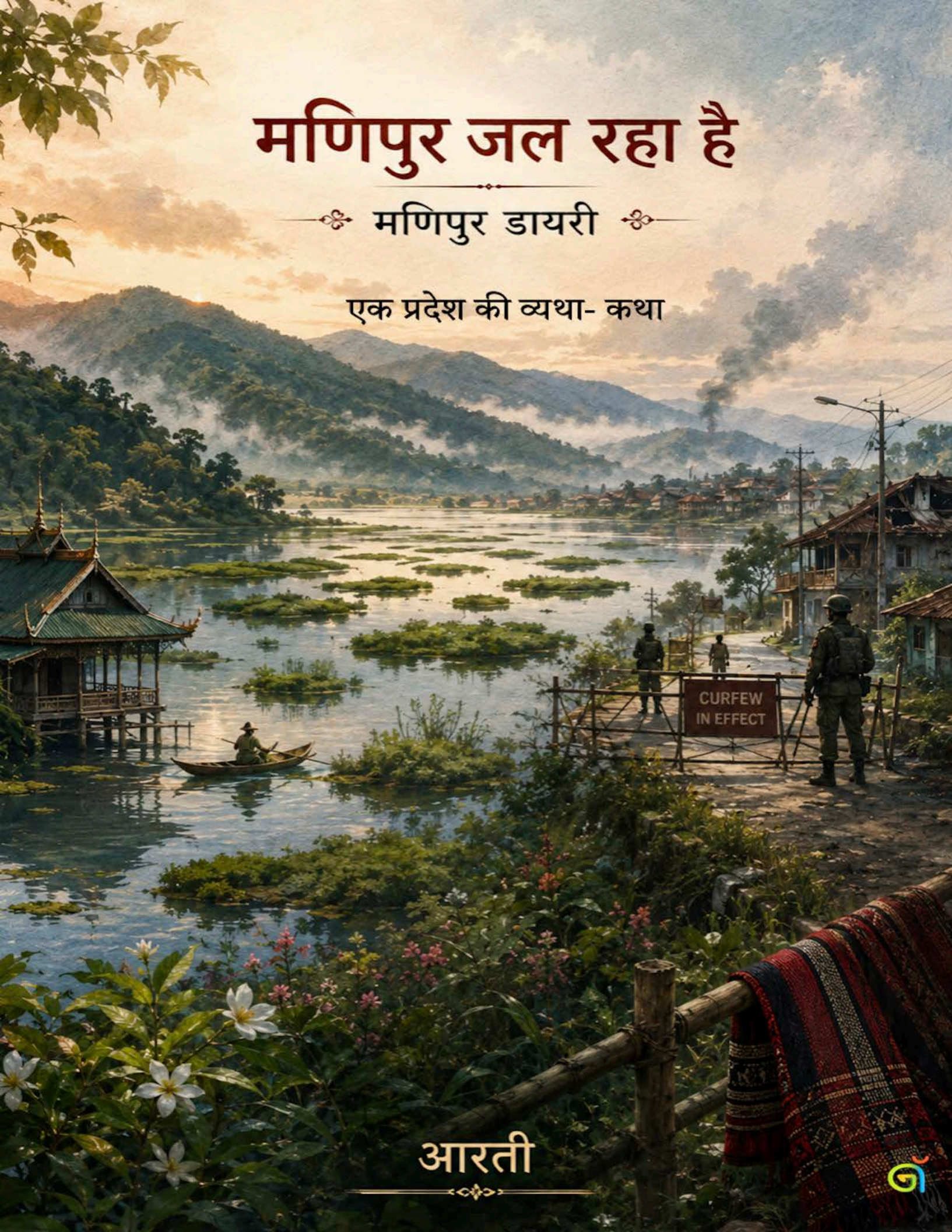

आरती

मणिपुर जल रहा है

मणिपुर डायरी

आरती

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: जुलाई, 2026

© आरती

मणिपुर के आँसू

कभी अंग्रेज़ी में किसी कवि की कविता पढ़ी थी, जिसमें उसने धरती से पूछा था, 'तुम कहाँ-कहाँ ज़ख़्मी हो?' तो धरती ने जवाब दिया था, 'सर, जिस्म छलनी है, हर हिस्सा दुख रहा है।'

मणिपुर बहुत दूर है। इतनी दूर कि आठ हज़ार चार सौ करोड़ के जहाज़ ने इस दूरी को तय करने में दो साल चार महीने दस दिन लगा दिए। नहीं, मणिपुर हमेशा इतना दूर नहीं था। प्रधानमंत्री जनवरी 2019 को वहाँ गए थे। जैसे-जैसे मणिपुर गृहयुद्ध की आग में झुलसता गया और जलने लगा, दूरियाँ बढ़ती गईं। मणिपुर जल रहा था और जलता ही जा रहा है। आरती ने ठीक ही कहा है कि 'जो जलता है, उसका अस्तित्व बदल जाता है। वह या तो राख बन जाता है या कोयला।' इस आग में मणिपुरी निवासी ही तो जल रहे थे। जलती हुई बस्तियाँ, घर, लोग, महिलाएं, मासूम बच्चे। यह सब तो वे गुजरात में देख चुके थे।

हमारे देश में छोटे-बड़े दंगों और नरसंहार का इतिहास पुराना है। आज़ादी से भी पहले का। इन पर लिखी रिपोर्ट्स और कतबों की कोई कमी नहीं। विशेषज्ञ बार-बार इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कोई भी दंगा बिना सरकारी तंत्र की मर्जी के कुछ घंटों से ज़्यादा चलाया नहीं जा सकता। दंगों के इतिहास पर नज़र डालें तो यह भी साबित होता है कि हर बड़े दंगे और नरसंहार के पहले लंबे समय तक तैयारी की जाती है।

नफ़रत का तापमान रोज़-ब-रोज़ बढ़ाया जाता है। फिर एक दिन अचानक कोई घटना ऐसी होती है की आग दूर-दूर तक फैल जाती है। लोगों को यह लगता है कि वही घटना दंगे का कारण है। इंदिरा गांधी के क़त्ल के बाद सिखों का जो क़त्ल-ए-आम हुआ उसकी ज़मीन भी काफ़ी पहले तैयार हो चुकी थी। नफ़रत की राजनीति तरह-तरह के दंगों के प्रयोग करती रही है। दंगों और नरसंहार का लक्ष्य भी अलग-अलग होता है। कभी सिर्फ़ नफ़रत की भट्टी को गरम रखना होता है, तो कभी बस दो समुदायों में दरार डालना, कभी संपत्ति पर क़ब्ज़ा करना होता है, तो कभी झुग्गी-झोपड़ी साफ़ करके ज़मीनों पर क़ब्ज़ा करना और कभी चुनाव जीतना।

इस पृष्ठभूमि में देखें तो मणिपुर के दंगे बिल्कुल अलग हैं। इस नरसंहार के ये सारे लक्ष्य तो थे ही पर यह बिल्कुल आला तरह का प्रयोग भी था। अब से पहले जितने भी दंगे और नरसंहार हुए उनमें हिंसक भीड़ के पास आधुनिक हथियार नहीं थे। पुलिस और अर्द्ध-सैनिक दलों के पास थे। ये आज़ाद भारत में अपनी तरह का पहला सिविल वॉर, या गृहयुद्ध का प्रयोग था। इसे दंगे और नरसंहार कहना ग़लत होगा।

हमें आरती का आभारी होना चाहिए कि वह मणिपुर गईं और वहाँ से आकर हिंसा के हर पहलू को क़लमबंद किया। इस किताब में उन्होंने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक यहाँ तक कि जेंडर के पहलू इस तरह पिरोए हैं कि हर तह खुलती चली जाती है। उनका कहना है कि 'मेरा उद्देश्य आँकड़े प्रस्तुत करना

नहीं' जैसा अक्सर ऐसी किताबों में किया जाता है। अपनी इस बात पर वह खरी उतरती हैं। वह इस किताब में पाठक से मणिपुर का दर्द साझा कर रही हैं। ये दर्द उन्होंने बड़ी शिद्दत से महसूस किया है और जितना महसूस किया है उतना ही शब्दों में उतार दिया है। लिखते वक़्त जब दर्द की टीसें बर्दाश्त से बाहर हो गईं तो उनकी क़लम ये लिखने पर मजबूर हो गयी - 'मणिपुर का आज का चेहरा, उसका दुर्भाग्य, उसका मातम, गहरे काले में लिपटा रंग आँखों के भीतर बैठा हुआ है। धकेलने पर भी हट नहीं रहा। धोने पर भी छूट नहीं रहा'...

इस किताब को पढ़ते हुए मुझे मुझे बार-बार ये एहसास होता रहा कि जहाँ-जहाँ प्रकृति ने कुछ ऐसा रचा है कि जिसे देखकर आपका दिल धरती पर स्वर्ग की कल्पना करने के लिए मजबूर हो जाए, वहाँ-वहाँ हिंसक राजनीति और क़ुदरत के ख़ज़ाने पर बाज़ार के क़ब्ज़े की लालच ने नफ़रत के बीज बो दिए हैं। इस गृहयुद्ध के प्रयोग का एक लक्ष्य क़ुदरत के ख़ज़ाने पर कॉर्पोरेट सेक्टर्स के क़ब्ज़े को स्थापित करना भी है।

-गौहर रज़ा

जी हां, मणिपुर अभी भी जल रहा है...

जली हुई चीज का अस्तित्व ही बदल जाता है। वह या तो राख होती है या कोयला। जब कोई पेड़ जलता है तो वैसा नहीं बचता, जैसे कि वह पहले हरा-भरा खड़ा मुस्कुरा रहा था। ऐसी आगों को बुझाने की भरपूर और ईमानदार कोशिशों के बाद भी वह (पेड़ हो या घर या आदमी ही क्यों न) शेष ठूंठ ही बचता है। कई बारिशों बाद बमुश्किल ही कुछ पत्तियां निकल पाती हैं। वहां फिर कभी चिड़ियों के घोंसले नहीं बनते, राहगीर उसके नीचे नहीं सुस्ताते, हवा उसको हिलाती- डुलाती नहीं, अठखेलियां नहीं करती। ठीक वैसा ही ठूंठ मणिपुर बनता जा रहा है। लपटों से घिरा, सुलगता, जलता कुछ बुझता हुआ।

आज के हालात और चारो तरफ फैले कसैले धुएं को देखकर नहीं कहा जा सकता कि हरी- भरी पहाड़ियों, घाटियों से घिरा खूबसूरत प्रांत मणिपुर कभी खिलखिला सकेगा।

हां, मैं जलते हुए मणिपुर को देखकर लौटी हूं। अपनी जोड़ी भर आंखों से। जिस-जिस कोने से ताड़ना, घूरना, देखना हो सकता था, वह कोशिश की। कई जगहों की कड़वी भी सच्चाइयों से नजर भी चुराई और अब फिर से, थोड़ी दूर से आंखें बंद कर दोबारा देखने की कोशिश कर रही हूं।